

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 5 अध्याय 11: जड़ भरत का उपदेश

22 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



पालकी अब भी अपने कन्धे पर उठाए, ऋषि जड़ भरत विनम्र हुए राजा रूहण के समक्ष मन का महान् रहस्य खोलते हैं — बन्धन और मुक्ति दोनों की जड़ — और उन्हें उस अमर भगवान् की ओर संकेत करते हैं जो प्रत्येक हृदय में निवास करते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्जम में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में, मौन ऋषि जड़ भरत ने, राजा रूहण की पालकी ढोने के लिए विवश किए जाकर, अमर आत्मा पर कुछ देदीप्यमान शब्दों से अभिमानी राजा को विनम्र कर दिया। पंचम स्कन्ध का यह ग्यारहवाँ अध्याय उसी संवाद को उसकी सबसे गहन गहराइयों में ले जाता है। राजा

झुक चुका है; उसका हृदय खुल गया है; और अब ऋषि — समस्त प्राणियों के मित्र — उसके समक्ष मन का महान् रहस्य खोलते हैं: किस प्रकार, प्रकृति के तीन गुणों से प्रेरित होकर, वह आत्मा को जन्म-मरण के चक्र पर बाँधता है; किस प्रकार भगवान् वासुदेव उसके भीतर समस्त के मौन साक्षी रूप में निवास करते हैं; और किस प्रकार बन्धन की समूची गाँठ अन्ततः भगवान् और गुरु के चरणों की शरण लेकर काटी जा सकती है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 5 (पंचम स्कन्ध)
- अध्याय: 11 (एकादश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: जड़ भरत का राजा रूहण को उपदेश
- प्रमुख वक्ता: जड़ भरत (ब्राह्मण ऋषि), राजा रूहण से कहते हुए; सम्पूर्ण कथा श्रीशुकदेव गोस्वामी (श्रीशुक) द्वारा राजा परीक्षित को सुनाई गई
- प्रमुख श्रोता: कथा के भीतर राजा रूहण — और राजा परीक्षित, यह संवाद सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित ऋषियों को पुनः सुनाया जाता है
- मुख्य स्थल: कपिल मुनि की ओर जाने वाला मार्ग, जहाँ जड़ भरत अब भी राजा की पालकी अपने कंधे पर उठाए हैं
- केन्द्रीय विषय: जड़ भरत का मन पर उपदेश — किस प्रकार, तीन गुणों से शासित होकर, वह बन्धन और मुक्ति दोनों की जड़ बनता है; उसकी ग्यारह वृत्तियाँ; प्रत्येक प्राणी के अन्तर्साक्षी रूप में भगवान् वासुदेव; और गुरु तथा भगवान् की आराधना द्वारा मन की माया को नष्ट करने का आह्वान
- प्रमुख श्लोक-सीमा: स्कन्ध 5, अध्याय 11, श्लोक 1-17
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय से

दसवें अध्याय में, कपिल मुनि की ओर यात्रा करते राजा रूहण ने मौन जड़ भरत को अपनी पालकी ढोने के लिए विवश किया। उनकी धीमी और सावधान चाल के लिए — जो छोटे-से छोटे प्राणी को भी बचाती थी — उपहास पाकर, ऋषि ने एक शान्त उपदेश से उत्तर दिया: कि समस्त भार और पीड़ाएँ नश्वर देह के हैं, जबकि भीतर की आत्मा अमर और मुक्त रहती है, और कि स्वामी और सेवक मात्र क्षणिक व्यवहार हैं। उनके शब्दों ने राजा के अभिमान को बींध दिया, और शक्तिशाली रूहण अपने आसन से उतरकर श्रमिक के चरणों में झुक गया, क्षमा माँगते और आत्मा के लिए सच्ची शरण पूछते हुए। यह ग्यारहवाँ अध्याय उसी वार्तालाप को आगे बढ़ाता है, जब ऋषि — अब भी भार उठाए — विनम्र हुए राजा के समक्ष मन का गहन रहस्य खोलते हैं।

ऋषि राजा को उत्तर देते हैं

अपने कन्धे पर भार उठाए हुए ही, उस महान् आत्मा ने उसी अविचल कोमलता से राजा की ओर मुख किया। राजा ने, उन्होंने कहा, ऐसे शब्द कहे थे जो विवेकियों की उक्तियों के समान गूँजते थे; और फिर भी, उनकी समस्त चमक के बावजूद, वे उस व्यक्ति की वाणी नहीं थे जिसने सचमुच देखा हो। क्योंकि जो लोग सत्य को जानते हैं वे संसार के क्षणिक व्यवहारों को — स्वामी और सेवक की, बलवान् वाहक और दुर्बल की इस बातचीत को — कभी परम सत्य की खोज में नहीं मिलाते; जहाँ केवल एक ही सत्य खोजा जाता है, वहाँ ऐसे भेदों का कोई स्थान नहीं।

ब्राह्मण उवाच

अकोविदः कोविदवादवादान्

वदस्यथो नातिविदां वरिष्ठः ।

न सूरयो हि व्यवहारमेनं

तत्त्वावमर्शेन सहामनन्ति ॥ १ ॥

brāhmaṇa uvāca akovidah kovida-vāda-vādān vadasy atho nāti-vidām variṣṭhaḥ na sūrayo hi vyavahāram enaṁ tattvāvamarsēna sahāmananti

अर्थ: ब्राह्मण ने कहा: यद्यपि अज्ञ हो, तुम ऐसे शब्द बोलते हो जो विवेकियों के प्रत्युत्तर के समान गूँजते हैं; फिर भी तुम सचमुच ज्ञानियों में श्रेष्ठ नहीं हो। क्योंकि जो सत्य को देखते हैं वे इन सांसारिक व्यवहारों को — जैसे स्वामी और सेवक को — कभी ऐसे नहीं तौलते मानो वे परम सत्य की जिज्ञासा से सम्बन्ध रखते हों। (स्कन्ध 5, अध्याय 11, श्लोक 1)

तब वे स्वयं पावन मार्गों की चर्चा करने लगे। वे वेद-वचन जो स्वर्ग की स्तुति गाते और गृहस्थ जीवन के अनन्त कर्मकाण्डों का विस्तार करते हैं, उन्होंने कहा, शुद्ध और निर्मल सत्य को प्रायः प्रकट नहीं होने देते, क्योंकि उनके वचन फल और पक्षपात में उलझे रहते हैं। और उपनिषदों के सर्वोच्च वचन भी, जो वेदों के शिरोमणि हैं, उस व्यक्ति को आत्मा को साक्षात् प्रकट नहीं कर सकते जिसने अभी तक घर और स्वर्ग की मधुरता को एक बीतते स्वप्न के समान — गर्व से त्याग देने योग्य वस्तु के समान — देखना नहीं सीखा।

यहीं इस समूचे उपदेश की धुरी है। जो लोग केवल वेदों की उस प्रतिज्ञा से चिपके रहते हैं — अच्छे जन्म, समृद्धि अथवा स्वर्ग-वास की — जिसे विवेकी जन 'वेदवाद' कहते हैं, अर्थात् कर्मकाण्डी की शास्त्र-दृष्टि — वे फल को ही लक्ष्य समझ बैठते हैं; और वह पुण्य, चाहे कितना ही विशाल क्यों न हो, भोगते ही समाप्त हो जाता है, और आत्मा पुनः इसी जन्म-मरण के संसार में लौट आती है। केवल वही, जो ऐसे फल से आगे बढ़कर तत्त्व तक — वेदों के पीछे छिपी वास्तविकता तक — पहुँचता है, और अपना कठिन अर्जित ज्ञान भी भगवान् के चरणों में समर्पित कर देता है, इस प्रकार लौटाया नहीं जाता। यही कारण है कि ऋषि, सत्रह श्लोकों के बाद, किसी और तर्क से नहीं अपितु आराधना से अपनी बात समाप्त करेंगे: क्योंकि कर्मकाण्ड अथवा ज्ञान का कोई भी संचय, चाहे कितना ही महान् क्यों न हो, अकेले किसी आत्मा को मन की माया के पार नहीं ले जाता — केवल वासुदेव की शरणागति ही ले जाती है। (श्लोक 2-3)



पालकी अब भी उठाए हुए, जड़ भरत कोमलता से राजा रूहण को बताते हैं कि सत्य के ज्ञाता संसार के व्यवहारों को परम सत्य की खोज से कभी नहीं मिलाते (श्लोक 1-3)।

मन — बन्धन और मुक्ति की जड़

संसार के मार्गों से ऋषि उनके गुप्त स्रोत — स्वयं मन — की ओर मुड़े। जब तक किसी मनुष्य का मन रज से, या सत्त्व से, या तम से शासित रहता है, उन्होंने कहा, तब तक वह इन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के द्वारा निरन्तर काम करता रहता है, उसके लिए कभी पुण्य और कभी पाप की फसल बटोरता हुआ।

यावन्मनो रजसा पूरुषस्य
सत्त्वेन वा तमसा वानुरुद्धम् ।
चेतोभिराकूतिभिरातनोति
निरङ्कुशं कुशलं चेतारं वा ॥ ४ ॥

yāvan mano rajasā pūruṣasya sattvena vā tamasā vānuruddham cetobhir ākūtibhir ātanoti niraṅkuśaṁ kuśalaṁ cetaraṁ vā

अर्थ: जब तक किसी मनुष्य का मन रज, सत्त्व अथवा तम के गुण से आविष्ट रहता है, तब तक वह अनियन्त्रित रूप से अपनी ज्ञान और कर्म की शक्तियों के द्वारा फैलता रहता है, उसके लिए कभी शुभ और कभी अशुभ की फसल उत्पन्न करता हुआ। (स्कन्ध 5, अध्याय 11, श्लोक 4)

यह मन, उन्होंने आगे कहा, पुराने संस्कारों का भण्डार है, उन्हीं विषयों से रङ्गा जिनकी वह लालसा करता है, और सदा तीन गुणों के प्रवाह पर हिलता-डुलता। यह सूक्ष्म शरीर के सोलह अंगों में अग्रणी है, और, बार-बार नए नामों और रूपों में अपने को ढाँपते हुए, यह आत्मा को उच्चतर जन्म में या निम्नतर में ले जाता है। माया से रचा और देहधारी आत्मा के चारों ओर सटा हुआ, यह उस आत्मा को जन्म-मरण के भँवर में खींचता है, समय आने पर सुख, दुःख और वह जड़ता — जो न सुख है न दुःख — बाँटता हुआ। क्योंकि केवल जब तक मन बना रहता है, तभी तक जाग्रत और स्वप्न के बदलते दृश्य साक्षी आत्मा के समक्ष उठते रहते हैं। और इसीलिए ऋषिगण एक अद्भुत बात कहते हैं: कि यही मन एक साथ आत्मा के निम्न, बद्ध अवस्था के बन्धन का कारण है और उसकी सर्वोच्च मुक्ति का द्वार भी।

तावानयं व्यवहारः सदाविः
क्षेत्रज्ञसाक्ष्यो भवति स्थूलसूक्ष्मः ।
तस्मान्मनो लिङ्गमदो वदन्ति
गुणागुणत्वस्य परावरस्य ॥ ७ ॥

*tāvān ayam vyavahārah sadāviḥ kṣetrajña-sākṣyo bhavati sthūla-sūkṣmaḥ tasmān mano liṅgam
ado vadanti guṇāguṇatvasya parāvarasya*

अर्थ: जब तक मन बना रहता है, तब तक यह समस्त दृश्य — स्थूल और सूक्ष्म — क्षेत्र के ज्ञाता, साक्षी आत्मा के समक्ष प्रकट होता रहता है। इसी कारण विवेकी लोग मन को आत्मा की निम्न, बद्ध अवस्था और उच्च, मुक्त अवस्था दोनों का सूक्ष्म चिह्न कहते हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 11, श्लोक 7)

जो मन इन्द्रिय-सुखों के पीछे दौड़ता है, उन्होंने कहा, वह प्राणी को शोक में ले जाता है; और जो मन उनसे धुलकर स्वच्छ हो जाता है वह उसे परम कल्याण की ओर ले जाता है। और उन्होंने इसके लिए एक सरल उपमा दी: जैसे दीपक, जब तक घी में डूबी बत्ती को पीता है, धुएँ-भरी, कज्जल-युक्त लौ से जलता है, किन्तु ईंधन चुक जाने पर अपनी स्वच्छ, अदृश्य प्रकृति में लौट आता है — वैसे ही मन, जब तक इन्द्रिय-विषयों और उनके कर्मों से चिपका रहता है, विक्षुब्ध, अन्धकारमय धाराओं में बहता है, और उस चिपकाव के छूट जाने पर ही अपने शुद्ध सार में लौटता है।



ऋषि मन की उपमा दीपक से देते हैं: इन्द्रिय-लालसा के ईंधन को पीते समय धुआँदार और कज्जल-युक्त, और उस लालसा के छूट जाने पर स्वच्छ और शुद्ध — मन ही बन्धन और मुक्ति दोनों की जड़ है (श्लोक 4-8)।

मन की ग्यारह धाराएँ

तब, राजा की स्पष्ट समझ के लिए, ऋषि ने उन्हीं वाहिकाओं की गणना की जिनके द्वारा मन स्वयं को संसार में उँडेलता है।

एकादशासन्नमसो हि वृत्तय
 आकृतयः पञ्च धियोऽभिमानः ।
 मात्राणि कर्माणि पुरं च तासां
 वदन्ति हैकादश वीर भूमीः ॥ ९ ॥

ekādaśāsan manaso hi vṛttaya ākūṭayaḥ pañca dhiyo 'bhimānaḥ mātṛāṇi karmāṇi puram ca tāsām vadanti haikādaśa vīra bhūmīḥ

अर्थ: पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और अहंकार — ये ग्यारह धाराएँ हैं जिनमें मन बाहर बहता है; और विवेकी लोग, हे वीर राजन्, पाँच विषयों, पाँच क्रियाओं और स्वयं देह को वे ग्यारह क्षेत्र कहते हैं जिनमें वे धाराएँ उँडेलती हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 11, श्लोक 9)

इन्हीं द्वारों से, उन्होंने समझाया, मन अपने विषयों से मिलता है: गन्ध और रूप, स्पर्श और रस और शब्द पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण किए जाते हैं; देना और लेना, गति, वाणी, और देह की स्वाभाविक क्रियाएँ पाँच कर्मेन्द्रियों से बहती हैं; और अहंकार, जो देह को “मेरा” कहता है, ग्यारहवाँ है। असंख्य विषयों की विविधता से, वस्तुओं की प्रकृति से, पुराने संस्कारों और कर्मों तथा काल की क्रिया से गुणित होकर, ये ग्यारह विकार सैकड़ों में, सहस्रों में, करोड़ों में शाखाबद्ध हो जाते हैं। फिर भी उनमें से एक भी अपने बल पर नहीं टिकता, न ही वे एक-दूसरे को उत्पन्न करते हैं; वे सब केवल भगवान् से ही प्रकट होते हैं। और भगवान्, सदा शुद्ध और अनासक्त, इससे अधिक कुछ नहीं करते कि देखते रहें — मन की इन असंख्य तरंगों के मौन साक्षी, जो आत्मा की माया-रचित प्रकृति की सतह पर उठती और विलीन होती हैं, कभी प्रकट कभी गुप्त।



मन स्वयं को ग्यारह वाहिकाओं से बाहर उँडेलता है — इन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ और अहंकार — जबकि सदा-शुद्ध भगवान् उसकी उठती और विलीन होती तरंगों के मौन साक्षी रूप में देखते रहते हैं (श्लोक 9-12)।

भगवान् वासुदेव, भीतर का साक्षी

तो फिर यह साक्षी कौन है? ऋषि ने अब उन्हें स्पष्ट रूप से नाम दिया, और उनके शब्द स्तुति में उठ गए।

क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः

साक्षात्स्वयंज्योतिरजः परेशः ।

नारायणो भगवान् वासुदेवः

स्वमाययाऽऽत्मन्यवधीयमानः ॥ १३ ॥

यथानिलः स्थावरजङ्गमाना-

मात्मस्वरूपेण निविष्ट ईशेत् ।

एवं परो भगवान् वासुदेवः

क्षेत्रज्ञ आत्मेदमनुप्रविष्टः ॥ १४ ॥

*kṣetrajña ātmā puruṣaḥ purāṇaḥ sākṣāt svayaṁ jyotir ajaḥ pareśaḥ nārāyaṇo bhagavān
vāsudevaḥ sva-māyayātmāny avadhīyamānaḥ yathānilaḥ sthāvara-jaṅgamānām ātma-
svarūpeṇa nivīṣṭa īśet evaṁ paro bhagavān vāsudevaḥ kṣetrajña ātmedam anupraviṣṭaḥ*

अर्थः वह साक्षी आत्मा है, क्षेत्र का ज्ञाता — पुरातन पुरुष, स्वयंप्रकाश और अजन्मा, परम शासकः भगवान् नारायण, सर्वशक्तिमान् वासुदेव, जो अपनी ही शक्ति से हृदय के भीतर निवास करते हैं। जैसे एक ही वायु, समस्त चर और अचर प्राणियों में उनके प्राण रूप में प्रवेश कर, उन्हें भीतर से धारण और शासित करती है, वैसे ही परम भगवान् वासुदेव इस समूचे विश्व में उसके अन्तरतम आत्मा और सर्वसाक्षी नियन्ता रूप में प्रविष्ट हुए हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 11, श्लोक 13-14)

वे सर्वव्यापी और सबसे पुरातन हैं, ऋषि ने कहा — सबके प्रथम कारण, सदा पूर्ण और स्वयंप्रकाशमान, जन्म और मृत्यु से मुक्त, उच्चतम प्राणियों के भी शासक। अपनी ही अद्भुत शक्ति से वे प्रत्येक हृदय में छिपे निवास करते हैं, प्रत्येक प्राणी के अपने प्राण से भी अधिक निकट, और फिर भी मन की समस्त अशान्त हलचलों से अछूते।



जैसे एक ही वायु समस्त प्राणियों को भीतर से व्याप्त और धारण करती है, वैसे ही भगवान् वासुदेव प्रत्येक हृदय में अन्तरतम आत्मा और सर्वसाक्षी नियन्ता रूप में निवास करते हैं (श्लोक 13-14)।

मन को गॉठ काट दो

राजा को आत्मा का बन्धन और उससे परे निवास करने वाले भगवान् दोनों दिखा चुकने पर, ऋषि अन्ततः अपने प्रेमपूर्ण आदेश पर आए। जब तक, उन्होंने कहा, कोई मनुष्य ज्ञान के उदित होते प्रकाश से इस माया को झटक नहीं सकता — अपनी आसक्तियों को ढीला नहीं कर सकता और काम और क्रोध, लोभ और मोह, मद और मत्सर — इन छह भीतरी शत्रुओं को नहीं जीत सकता — तब तक वह जन्म-मरण के चक्र में भटकता रहता है। और जब तक वह इस मन को उसके सच्चे रूप में नहीं देख पाता — आत्मा का अपना सूक्ष्म चिह्न, एक उर्वर क्षेत्र जो शोक और मोह, रोग और लालसा और लोभ, वैर और “मेरे” की अविराम पीड़ा से घना बोया हुआ है — तब तक जन्म और मृत्यु की यातनाएँ उसके लिए अन्तहीन रूप से उठती रहती हैं।

भ्रातृव्यमेनं तददभ्रवीर्य-

मुपेक्षयाध्येधितमप्रमत्तः ।

गुरोर्हरेश्वरणोपासनास्त्रो

जहि व्यलीकं स्वयमात्ममोषम् ॥ १७ ॥

*bhrātṛvyam enaṁ tad adabhra-vīryam upekṣayādyedhitam apramattaḥ guror hares
caraṇopāsanāstro jahi vyalīkaṁ svayam ātma-moṣam*

अर्थ: इसलिए, सदा सावधान रहकर, और अपने गुरु के रूप में उपस्थित भगवान् श्रीहरि के चरण-कमलों की आराधना को अपना अस्त्र बनाकर, इस बलवान् शत्रु — मन — को मार डालो, जो तुम्हारी अपनी उपेक्षा से धृष्ट हो उठा है, और जो, यद्यपि स्वयं असत् है, फिर भी तुम्हें तुम्हारी ही आत्मा से लूट लेता है। (स्कन्ध 5, अध्याय 11, श्लोक 17)



ऋषि राजा से आग्रह करते हैं कि वह गुरु के रूप में उपस्थित भगवान् के चरणों की आराधना को उस अस्त्र के रूप में ग्रहण करे जो मन की माया को मारता और आत्मा को मुक्त करता है (श्लोक 15-17)।

इस अध्याय को प्रमुख शिक्षाएँ

मन बन्धन और मुक्ति दोनों की जड़ है। प्रकृति के तीन गुणों से प्रेरित होकर, मन जाग्रत और स्वप्न का समूचा दृश्य बुनता है और आत्मा को जन्म-जन्मान्तर खींचता है। फिर भी वही मन, सत्य की ओर मुड़कर, मुक्ति का द्वार बन जाता है। हम मन को कहाँ लगाते हैं, इसी से सब कुछ निर्णीत होता है।

फल के लिए किया गया कर्मकाण्ड स्वयं सत्य को प्रकट नहीं कर सकता। जो वेद-मार्ग स्वर्ग का वचन देते हैं, और शास्त्र के सर्वोच्च वचन भी, उस व्यक्ति के लिए आत्मा को नहीं खोलते जो अब भी भोग की मधुरता से चिपका है। केवल जब हम उस मधुरता को त्यागने को तैयार होते हैं, जैसे हम एक स्वप्न को त्याग देते हैं, तभी सत्य प्रकाशित होने लगता है।

ग्यारह द्वारों पर दृष्टि रखो। मन इन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों और उस अहंकार से बाहर बहता है जो देह को “मेरा” कहता है, असंख्य लालसाओं में शाखाबद्ध होता हुआ। इन वाहिकाओं को उनके सच्चे रूप में जानकर, हमें अब उनमें असहाय होकर बहने की आवश्यकता नहीं।

भगवान् वासुदेव भीतर के साक्षी हैं। जैसे एक ही वायु प्रत्येक प्राणी में प्राण फूँकती है, वैसे ही परम भगवान् प्रत्येक हृदय में अन्तरतम आत्मा रूप में निवास करते हैं, सदा शुद्ध, मन की अशान्त तरंगों को देखते हुए और उनसे अछूते। उन्हें भीतर स्मरण करना ही हमारी समस्त अशान्ति के स्थिर केन्द्र को पाना है।

भक्ति के अस्त्र से गाँठ काटो। मन केवल हमारी अपनी उपेक्षा से बलवान् और धृष्ट होता है; यद्यपि असत् है, वह हमें हमारी ही आत्मा से लूट लेता है। जो एकमात्र अस्त्र उसे मारता है वह है भगवान् के चरणों की प्रेमपूर्ण आराधना, गुरु के रूप में सम्मानित। सावधानी और भक्ति मिलकर आत्मा को मुक्त करती हैं।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस दृश्य में कुछ अद्भुत रूप से कोमल है: एक ऋषि जो अब भी एक राजा की पालकी अपने कन्धे पर उठाए है, और, द्वेष के तनिक भी चिह्न के बिना, उसी राजा के समक्ष आत्मा का सबसे गहन ज्ञान उँडेल रहा है। वे किसी सिंहासन से उपदेश नहीं देते; वे एक भार के नीचे से सिखाते हैं। और जो वे राजा को देते हैं वह कोई भर्त्सना नहीं, अपितु एक कुंजी है — यह ज्ञान कि जिस मन पर हम प्रायः अपने दुःखों का दोष मढ़ते हैं, वह स्वभाव से न हमारा स्वामी है और न हमारा शत्रु, अपितु एक सेवक है जो अपना स्थान भूल गया है। वह हमें केवल तब तक बाँधता है जब तक हम उसे पोषते हैं, और जिस क्षण हम अपनी लालसा खींच लेते और उस भगवान् की ओर मुड़ते हैं जो सदा से मौन साक्षी रहे हैं, वह शान्त हो जाता है। भागवत कितनी कोमलता से इसे हमारे समक्ष रखता है: हमसे मन से घृणा करने या उसे बलपूर्वक वश में करने को नहीं कहा जाता, अपितु एक मधुरतर अस्त्र उठाने को — भगवान् के चरणों की आराधना, गुरु के जीवित रूप में हमारे समक्ष धारित। जब हमारा थोड़ा भी ध्यान वहाँ बहता है, तब ग्यारह द्वारों का समूचा कोलाहल शान्त होने लगता है, और आत्मा उस स्वतन्त्रता को स्मरण करती है जो कभी सचमुच खोई ही नहीं थी।

एक दैनिक भक्ति-साधना

आज, अपने ही मन पर एक कोमल दृष्टि रखिए। जब आप उसे इन्द्रियों से बाहर दौड़ते देखें — कुछ देखने, चखने, अधिकार करने, वाद करने के पीछे जाते — तो उससे मत लड़िए; बस एक कोमल श्वास के साथ उसे लौटा लाइए और उस क्षण को भीतर के भगवान् को अर्पित कीजिए, मन ही मन कहते हुए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” दिन में एक बार, शान्त बैठकर स्मरण कीजिए कि वही भगवान् वासुदेव जो सब में व्याप्त

हैं, आपके अपने हृदय में साक्षी रूप में निवास करते हैं, आपके प्राण से भी अधिक निकट। और उनकी आराधना को अपने गुरु तथा उन पावन जनों के प्रति श्रद्धा पर टिकाइए जो मार्ग दिखाते हैं, उनके मार्गदर्शन का सम्मान करते हुए जैसे जड़ भरत ने राजा से करने को कहा। इसमें मन संघर्ष से नहीं जीता जाता, अपितु प्रेम से वश में किया जाता है।

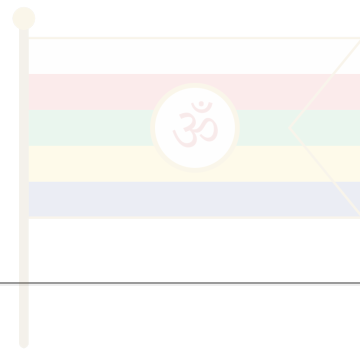
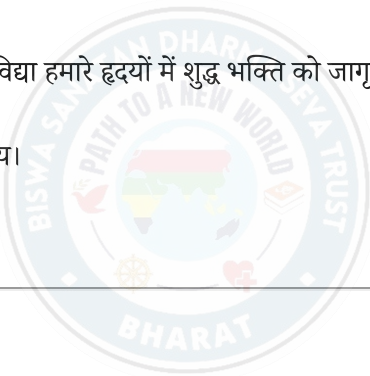
उपसंहार

पंचम स्कन्ध का ग्यारहवाँ अध्याय हमें जड़ भरत के राजा रहूगण को दिए उपदेश का शिरोमणि देता है। पालकी अब भी उठाए, ऋषि मन के उस रहस्य को खोलकर रखते हैं जो बन्धन और मुक्ति दोनों का मूल है: वह प्रकृति के तीन गुणों के वश में आकर संस्कारों का भण्डार बन जाता है और आत्मा को जन्म-मरण में खींचता है — और वही मन, अपनी लालसाओं से मुड़कर, मुक्ति का द्वार बन जाता है। वे उसकी ग्यारह धाराओं की गणना करते हैं जो इन्द्रियों और उनके विषयों की ओर बहती हैं, और प्रकट करते हैं कि वे सब केवल भगवान् से उठती हैं, जो शुद्ध और मौन साक्षी रूप में देखते रहते हैं। वह साक्षी, वे घोषित करते हैं, स्वयं भगवान् वासुदेव हैं, प्रत्येक प्राणी के अन्तरतम आत्मा, समस्त में व्याप्त जैसे एक वायु समस्त प्राणों में व्याप्त है। और वे एक प्रेमपूर्ण आदेश से समाप्त करते हैं: मन की धृष्ट माया को बल से नहीं, अपितु भक्ति से मारने का — भगवान् के चरण-कमलों की आराधना, गुरु के रूप में उपस्थित, को उस एकमात्र निश्चित अस्त्र के रूप में उठाकर जो आत्मा को मुक्त करता है। यह एक ऐसा उपदेश है जो हमारे समूचे अन्तर्जीवन को भगवान् की ओर मोड़ देता है, और सबसे विनम्र हृदय को घर का मार्ग दिखाता है।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।



संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, पंचम स्कन्ध, एकादश अध्याय, “Bharata’s teaching to king Rahugana।”
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञान • विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संरक्षण अथवा समर्थन का कोई भाव अभिप्रेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-11-jada-bharata-teaching-king-rahugana-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञानम् • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

